आज के स्त्री लेखन में नारी की सामाजिक स्थिति

डॉ. केशव क्षीरसागर

सारांश - किसी भी देश का साहित्य सामाजिक परिवर्तन का मार्मिक एवं सक्षम दस्तावेज होता है। २१ वी सदी में समाज, परिवार और व्यक्ति आदि सभी स्तरों पर जो तीव्रता से बदलाव आया है उसका असर हिन्दी साहित्य पर भी व्यापक रूप से परिलक्षित होता है। शिक्षा के कारण स्त्रियों की मानसिक और बौद्धिक स्थिति में काफी बदलाव हुए हैं। उन्होंने अब पुरानी मान्यताओं को तोड़कर व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मार्ग अपनाया है। २१ वी सदी के साहित्य का स्वरूप वह नहीं रह गया है जो आजादी से पहले हुआ करता था। नारी के सम्बन्ध भी परिवार के साथ पहले जैसे नहीं रहे। वर्तमान परिपेक्ष्य में नारी अपनी सही भूमिका को तलाशती हुई स्वयं को पहचानने और कुंठा से मुक्त करने की दिशा में निरंतर आगे बढ़ रही है। उसकी संकल्प की दृढ़ता और आत्म गौरव से परिपूर्ण निष्ठा समाज में उसे लेखनी के माध्यम से प्रतिष्ठित करने में सहायक सिद्ध हो रही है। २१ वी सदी का नारी लेखन हमें आधुनिकता, वैज्ञानिकता, तार्किकता, समसामयिकता तथा युगीन भाव बोध का परिचय कराता है। आज का नारी लेखन उच्च कोटि का होने के साथ-साथ वैविध्यपूर्ण भी है। इस सदी की महिलाओं ने अपने लेखन में जीवन और समाज के सभी रंगों को अपनी तूलिका रूपी लेखनी से बड़ी भावात्मकता और कलात्मकता से अत्यंत मार्मिकता से उकेरा है। इनमें कहीं वृद्ध समस्या है तो कहीं नारी मुक्ति की छटपटाहट, कहीं किसी बड़े परिवार की समस्या है, तो कहीं आधुनिक जीवन का खोखलापन उभरकर सामने आया है।

बीज शब्द : नारी लेखन आधुनिकता, वैज्ञानिकता, तार्किकता, समसामयिकता, युगीन भाव बोध का परिचय।

विषय की व्यापकता को देखते हुए २१ वी सदी के नारी लेखन को क्रमशः उपन्यास, कहानी, काव्य और आत्मकथा जैसी विधाओं के अंतर्गत विभक्त कर विस्तार से परिचय प्राप्त करेंगे -

क) उपन्यास - हिन्दी उपन्यास साहित्य में नारी लेखन पिछले दो - तीन दशकों से एक महत्वपूर्ण स्थान बना चुका है। नारी लेखन के अंतर्गत उपन्यास के क्षेत्र में एक बेहद उर्वर जमीन हिन्दी के रचनात्मक साहित्य में देखी जा सकती है। "कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' उपन्यास में एक अक्खड़ और दबंग औरत की एकांतिक तस्वीर प्रस्तुत हुई है। वहीं उषा प्रियंवदा की 'रुकोगी नहीं

राधिका', 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' और 'शेष-यात्रा' आदि उपन्यासों में परंपरा और रूढ़ियों के द्वंद्व में फँसी एक आधुनिक स्त्री की अस्मिता को ढूँढने का प्रयास किया गया है। मन्नू भंडारी का उपन्यास 'आपका बंटी' की नायिका शकुन की कहानी हिन्दुस्तान के हजारों औरतों की त्रासदी की कहानी है। ममता कालिया के उपन्यास 'बेघर' और 'एक पत्नी के नोट्स' में एक मध्यमवर्गीय पढ़ी - लिखी महिला और पढ़े - लिखे वर्ग को बेनकाब किया गया हैं। नारी लेखन के क्षेत्र में मृदुला गर्ग के 'अनित्य', 'चितकोबरा', 'मैं और मैं', 'कठगुलाब' आदि ऐसे उपन्यास हैं जिसमें स्त्री विमर्श के विभिन्न रंग देखने को मिलते हैं।" १ चित्रा मुद्गल का 'एक जमीन अपनी' और 'आवाँ' इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। मेहरुनिस्सा परवेज ने अपने उपन्यास 'कोरजा' में आदिवासी परिपेक्ष्य में एक औरत के त्रासदी का अत्यंत सजीव एवं चिंतनीय वर्णन किया है। नासिरा शर्मा का उपन्यास 'एक और शाल्मली' एक अलग किस्म की स्वतंत्र चेतना से युक्त स्त्री की कहानी है जो अपने पति से संवाद चाहती है, बराबरी का दर्जा चाहती है। वहीं उनका दूसरा उपन्यास 'ठीकरे की मँगनी' में बचपन में बिना पैसे के लेन-देन की हुई मँगनी और उसके कारण संघर्ष करती स्त्री की कहानी है। राजी सेठ का 'तत्सम', चंद्रकांता का 'अपने अपने कोणार्क' तथा गीतांजलि श्री का 'माई' आदि ऐसे उपन्यास हैं जिनमें औरत के सामाजिक सरोकार उभरकर सामने आते हैं। नारी लेखन के दृष्टिकोण से प्रभा खेतान का 'पीली आँधी' तथा 'छिन्नमस्ता, मैत्रेयी पुष्पा का 'इदन्नमम' तथा 'चाक', मधु कांकरिया का 'सलाम आखिरी', अल्का सरावगी का 'शेष कादम्बरी' अनामिका का 'दस द्वारे पिंजरा' आदि उपन्यास इस दृष्टी से प्रमुख स्थान रखते हैं। कमल कुमार का हाल ही में प्रकाशित उपन्यास 'मैं घूमर नाचूँ' राजस्थान के एक बाल-विधवा स्त्री कृष्णा के चरित्र को दिखाते हुए स्त्री की आजादी को स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है।

ख) कहानी - यदि २१ वी सदी के नारी लेखन के परिपेक्ष्य में कहानी की बात की जाये तो यकीनन कहा जा सकता है कि महिला रचनाकारों ने हिन्दी कहानी के परिदृश्य को ज्यादा व्यापक, संवेदनशील और मानवीय बनाया है। उनका चिंतन अपने आस-पास के परिवेश का सच और सीधे शब्दों में रूपायित होकर कल्पना के सही अनुपात में संयोग से कथा का आकार ग्रहण कर लेता है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में कहानी लेखन नारी वर्चस्व के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज करता है और इनमें कई लेखिकाओं का लेखन जारी रहते हुए इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर लेता है। इनमें ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा, मृदुला गर्ग, मेहरुनिस्सा परवेज आदि के नाम प्रमुखता से लिये जा सकते हैं। ममता कालिया ने नारी विमर्श के दृष्टिकोण से अत्यंत

प्रामाणिक लेखन किया है। उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं - 'छुटकारा', 'एक अदद औरत', 'सीट नंबर छः', 'उसका यौवन'। चित्रा मुद्गल की कहानी 'ताशमहल' दो भागों में बँटी नारी व्यवस्था को अंकित करती है। सरला अग्रवाल के नारी विमर्श के प्रमुख कहानी संग्रह हैं - 'पुनरावृति नहीं होगी', 'मेंटल पीस'। नीलम शंकर की कहानी 'जो रुकता नहीं' विवाहेत्तर संबंधों पर आधारित है, वहीं चंद्रकांता की कहानी 'बच्चे कब मिलेंगे' दादी के रूप में बुढ़ापे के दर्द से टीसती नारी की व्यथा है। कहानी कार अंजू दुआ जैमिनी का संग्रह 'कंक्रीट की फसल' अपने भीतर की चुनौतियों, व्यक्ति के भीतर की लड़ाई को सहजता से अभिव्यक्ति देता है। तेजी ग्रोवर का कहानी संग्रह 'सपने में प्रेम की सात कहानियाँ' जीवन राग के रंगों का कई आयामों में परिचय देता है। गीतांजलि श्री का कहानी संग्रह 'यहाँ हाथी रहते थे' समय के तेज परिवर्तन को सांकेतिक रूप में अत्यंत मार्मिकता से प्रकट करता है। भावना शेखर का कहानी संग्रह 'खुली छतरी' गलत धारणाएँ ध्वस्त करता है और नए निकष गढ़ता है जो पाठक को संतप्त कर चमत्कृत कर देते है। इसमें नारी है तो अभिशप्त, वेश्या है तो चरित्रहीन, दलित है तो पीड़ित जैसे भ्रम और पूर्वाग्रह बार-बार टूटते दिखाई पड़ते हैं। अल्पना मिश्र का कहानी संग्रह 'कब्र भी कैद भी और जंजीरें भी' जुल्म, दहेज हत्या, स्त्री शोषण से जुड़ी घटनाओं को केन्द्र में रखे हुए है। लवलीन की कहानी 'प्रतीक्षा' एक आजाद ख्याल की लड़की की व्यथा कथा है जो अपनी कल्पना के अनुरूप पुरुष की प्रतीक्षा में अपने जीवन का बड़ा हिस्सा गुजार देती है। सुषमा मुनीन्द्र की कहानी 'पिया बसंती' स्त्री मुक्ति के सोपान की चार पीढ़ियों की व्याख्या करती है। श्रीमती दीपक शर्मा की कहानियाँ 'मेढकी' और 'ऊँची बोली' पुरुष सत्ता के दायरे में अभिशप्त औरत की असामयिक मृत्यु पर खत्म होते हैं। इसी तरह उपासना की कहानियाँ 'एगहीं सजनवा बिन हे राम' और 'अनाभ्यास का नियम' स्त्री संघर्ष को सजगता से चित्रित करती हैं। इक्कीसवीं सदी की महिला कथाकारों के साहित्य में परिवार के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन मिलता है। नारी लेखिकाओं के लेखन का स्वर बदला है और समय के साथ-साथ पारिवारिकता के साथ नारी की भूमिका में क्रमशः अंतर आता दिखाई देता है जो शिक्षा का परिणाम है।

ग) काव्य - आज की लेखिकाओं का लेखन क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण और बहुआयामी है। उनके लेखन में नारी विमर्श का स्वर प्रमुखता से देखने को मिलता है जिसमें इस सदी की नारी की चुनौतियों, अवरोधों, चिंताओं, विवशताओं का चित्रण प्रमुखता से हुआ है। आज की लेखिकाएँ नारी को अब केवल 'आँचल में दूध, आँखों में पानी' लेकर नहीं बल्कि अपनी अस्मिता की रक्षा करनेवाली और

अपनी पहचान बनाने वाली आधुनिक पढ़ी लिखी समझदार नारी के रूप में प्रस्तुत कर रही हैं। काव्य लेखन के क्षेत्र में नारी लेखन की चर्चा की जाये तो इस सदी की कवयित्रियों ने नारी के अन्तरंग, विषम, जटिल समस्याओं, ज्वलंत सवालों को समझदारी से समझने, सुलझाने का अथक प्रयास किया है। प्रसिद्ध लेखिका ममता कालिया का कविता संग्रह 'खांटी घरेलू औरत' काफी चर्चित रहा है -

"मेरी जगह तुम होते
इस घर में
एक सर्वहारा का जीवन जीते हुए
मैंने परिश्रम को ही माना पारिश्रमिक
तुम मेरी जगह होते
क्या करते सातों दिन श्रम
यह तुम्हारा सौभाग्य है
कभी कोई ऊँची बात नहीं सोचती
खांटी घरेलू औरत" २

डॉ रेणु शाह के 'देहरी के उस पार' में भी यही उद्घोष मिलता है-

"एक अँधेरे से लड़ना है हमको बारम्बार
कैसे कह दें खुश होने की
घड़ियाँ सम्मुख खड़ी हुई
दुविधाओं की बौछारों पर
सबकी आँखें गड़ी हुई
अबकी तो जाना ही होगा
देहरी के उस पार" ३

जया गोस्वामी की 'पुस्तक हूँ मैं' रचना वंचित, प्रताड़ित नारी का दर्द अभिव्यक्त करती है-
"मैं अनजानी लिपि की पुस्तक बाँच न पाया कोई अब तक"४ वहीं कवयित्री ममता किरण अपने पीढ़ी के एक नये परिदृश्य को अपनी कविता में सशक्तता की आवाज देती हुई कहती हैं -

"लगते हैं उसपर
कितने ही संगीन आरोप

पर वह उफ भी नहीं करती"५

इस प्रकार के अनेकों उदाहरण इक्कीसवीं सदी में कविता के क्षेत्र में नारी लेखन के मिलते हैं।

घ) आत्मकथा - साहित्य के उपन्यास, कहानी और काव्य की विधाओं में अपनी उपस्थिति विशिष्टता से दर्ज करने के पश्चात नारी लेखन का रुझान आत्मकथा की ओर देखने को मिल रहा है। वर्तमान में लेखिकाएँ आत्मकथा लेखन में अपनी साहसिक अभिव्यक्ति के लिये चर्चा में हैं। यूँ तो आत्मकथा लेखन की शुरुआत पहले ही हो चुकी थी परन्तु पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित नहीं हो पायी थी। जैसे 'सरलाः एक विधवा की आत्म जीवनी' का प्रकाशन वर्ष २००९ में हुआ परन्तु धारावाहिक के रूप में यह वर्ष १९१५ में 'स्त्री दर्पण' में प्रकाशित हो चुकी थी। आज लेखिकाओं ने अपनी समग्र जीवनी का चित्रण बड़ी ही निर्भीक और सशक्त रूप से अपनी आत्मकथा में करना प्रारंभ किया है। प्रसिद्ध पत्रकार शीला झुनझुनवाला ने 'कुछ कही कुछ अन कही' में अपने सात दशकों की जीवन गाथा को बखूबी बयां किया है। 'कस्तूरी कुंडल बसे' मैत्रेयी पुष्पा द्वारा रचित आत्मकथात्मक उपन्यास है जिसमें उनकी जीवन कथा के यथार्थ को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी' काफी चर्चित कृतियों में एक है। वहीं 'गुड़िया भीतर गुड़िया' मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा का दूसरा भाग है। दिनेश नंदिनी डालमिया ने अपनी आत्मकथा चार भागों में लिखी है जिसमें मारवाड़ी परिवार के अंतःपुर का चित्रण मिलता है। कुसुम अंसल ने अपनी आत्मकथा 'जो कहा नहीं गया' शीर्षक से लिखी है। प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' आज के नारी लेखन का सशक्त उदाहरण है जिसमें एक विवाहित पुरुष से अपने सम्बन्ध की साहसपूर्ण स्वीकारोक्ति है।

हिंदी आत्मकथा सच्चे मायने में वही होती है जिसमें पीड़ा के साथ-साथ आपने जो भोगा है, आपका जो शोषण हुआ है, उसे सच्चाई से चित्रित किया जाये, जिसमें आपकी कमजोरियाँ भी दर्ज हों। इसीलिए अगर स्त्रियाँ आत्मकथा लिख रही हैं तो उनपर तरह-तरह के लांछन भी लगाये जा रहे हैं। आत्मकथा के क्षेत्र में यही लगता है समान अवसर होने के बाद भी अभी औरत निर्द्वन्द्व होकर कुछ मनचाहा रच या लिख नहीं पा रही है। फिर भी आज की महिला लेखिकाओं ने अपनी हिम्मत और समझदारी का परिचय दिया है और इक्कीसवीं सदी में वे नारी लेखन के क्षेत्र में स्वेच्छा से आगे आ रही हैं। हिन्दी साहित्य के समकालीन परिदृश्य की इस चर्चा से स्पष्ट है कि इस सदी की लेखिकाएँ अपने लेखन को वैविध्यपूर्ण विषयवस्तु देकर, सुसंपन्न कर रही हैं। हमने यहाँ काव्य, कहानी, उपन्यास और आत्मकथा जैसी विधाओं में नारी लेखन की एक झाँकी प्रस्तुत

की है। किन्तु नारियों के समग्र योगदान से स्पष्ट लक्षित होता है कि वे नाटक, आलोचना, लघुकथा, संस्मरण आदि विधाओं में यथेष्ट उच्चस्तरीय, गंभीर लेखन से हिन्दी साहित्य की गौरवमयी परंपरा में श्रीवृद्धि कर रही हैं। वर्तमान स्त्री लेखन में स्वतंत्रता, समानता और न्याय जैसे मूलभूत अधिकारों के लिए संघर्षरत और सक्रिय स्त्री रचनाकार स्त्री-हितों की चर्चा स्वयं करने लगी है और अपनी अस्मिता को पहचान रही है। प्रभा खेतान का कहना है- 'यह इतिहास में पहली बार घट रहा है कि स्त्री पितृसत्ता को नकार रही है, उस सत्ता द्वारा आरोपित भूमिकाओं के प्रति सवाल उठा रही है, वह वस्तु से व्यक्ति बनने की प्रक्रिया में है।' स्त्री को हीन और भोग्या बना कर तथा पुरुष को अधिक वर्चस्ववादी शक्तियां देकर लैंगिक विभाजन की व्यवस्था समाज में हमेशा से चलती रही है। स्त्री साहित्य अपनी मूल चेतना में उसे पराधीन बनाने वाली इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था में निहित विवाह संस्था, धर्म, जाति, वर्ग आदि की स्त्री-विरोधी भूमिका को प्रकाश में लाता है। स्त्री को शक्तिहीन करने की यह प्रक्रिया बेहद सूक्ष्म, जटिल और संश्लिष्ट है, जिसमें स्त्री को कभी किसी संवाद या विवाद का अवसर नहीं दिया गया। स्त्री लेखन इन्हीं प्रश्नों से सीधी मुठभेड़ करके समाज की संकीर्ण मानसिकता से टकराने का जोखिम उठाता है। वह पुरुष को बेहतर सत्ता का मनुष्य मानने वाले समाज से प्रश्न करता है कि स्त्री आधी आबादी है, तो फिर उसे मानवीय गरिमा से वंचित क्यों रखा गया है। आज हिंदी में स्त्री लेखन का साहित्य समृद्ध और पहले की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत है। स्त्री रचनाकार एक बड़े बदलाव के साथ आत्मविश्वास से अपने सुख-दुख, आक्रोश और असहमति को व्यक्त कर रही है। वह समान नागरिक के रूप में पुरुष से किसी अतिरिक्त दया या सहानुभूति की अपेक्षा नहीं रखती। मात्र देह मुक्ति को विमर्श न मान कर वह बौद्धिक रूप से अधिक सक्षम, सामाजिक रूप से ज्यादा सचेत और परिपक्व है। भारत के रसोइघरों से महिलाओं की सामाजिक स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है। आज भी घर की बेटी, बहू, माँ व पत्नी चाहे कितनी भी पढ़ी-लिखी क्यों न हो; कितने ही बड़े पद पर काम क्यों न कर रही हो; घर के सभी सदस्यों के लिये खाना पकाने व परोसने की उम्मीद सिर्फ महिला सदस्य से ही की जाती है। इसी वजह से भारतीय समाज में लड़कियों को बचपन से ही रसोईघर के काम सिखाने शुरू कर दिए जाते हैं, जबकि लड़कों को रसोई से दूर रखा जाता है। जिससे आगे चलकर वे लड़के, जिनसे कभी रसोई के काम नहीं करवाए गए; जिन्होंने कभी अपने पिता को माँ के साथ खाना बनाते या अन्य घरेलू कामों में मदद करते नहीं देखा, वे भी अपने बच्चों को वैसा ही बनाते हैं जैसा उन्होंने अपने परिवार में देखा होता है। जिससे पितृसत्ता

की विचारधारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में बिना किसी रुकावट के स्थानांतरित होती रहती है और अधिकांश महिलाएँ पूर्ण रूप से देश के विकास में अपना योगदान नहीं दे पाती हैं।

यहाँ पर इस बात पर भी विचार करना ज़रूरी है कि, महिलाएँ घर के पुरुषों को खाना खिलाने के बाद अंत में खाना खाती हैं। घर का कोई पुरुष इस बारे में नहीं सोचता कि उन्हें भी हमारे साथ बैठकर खाने का अधिकार है। इसका यह मतलब नहीं कि सभी पुरुष क्रूर और हिंसक है। इसका मतलब यह है कि, पितृसत्ता ने हमें ऐसा बना दिया है कि हम उससे परे जाकर सोच नहीं पाते हैं। जिसमें बदलाव की ज़रूरत है।

निष्कर्ष : इस तरह हम देखते हैं कि २१ वी सदी की महिला लेखिकाओं ने अपने समग्र साहित्य के माध्यम से अपनी प्रमाणिक आपबीती अत्यंत मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त करने की पूरी कोशिश की है। सदियों से हो रहे अन्याय, अत्याचार को अपने विवेक से नकारने का साहस उनके साहित्य का सबसे बड़ा और उल्लेखनीय विशेषता हैं। जीवन जीते समय आए हुए कटु खट्टे - मीठे अनुभवों को वाणी देकर समाज को आईना दिखने उन्हें जरा भी डर या संकोच नहीं होता। उनकी अभिव्यक्ति अत्यंत वास्तविक होने के कारन सारी दुनिया की नजर उसपर पड़ना लाजमी भी था। उन्होंने कल्पना की जगह वस्तिकता को रचना का प्रमुख माध्यम बनाया यही उनके जीत की शुरुवात थी। जो उन्हें इस क्षेत्र में हिमालय की चोटी पर लाकर खड़ा कर देती है यही इस काल की सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जाती है। इस प्रकार हम आज के संदर्भ में बात करे तो कह सकते हैं कि भारतीय समाज में आधुनिक स्त्रियों के अस्तित्व और उसकी अस्मिता के प्रश्न को लेकर आज की युवा पीढ़ी काफी जागरूक हुई है। स्त्री शोषण के विरुद्ध देश के आम जन की आवाज स्त्री की आवाज के साथ जुड़ चुकी है। वर्तमान समय में "बदलते यथार्थ ने स्त्री के अंत:करण को भी बदल डाला है। भ्रष्टाचार के विरुद्ध हुए आन्दोलन ने जहाँ आम आदमी के सोए हुए विवेक को जगाकर उसे किसी भी अन्याय के विरुद्ध एकजुट होना सिखाता तो निर्भया आन्दोलन ने इसे और हवा दी।... सारे टीवी चैनल, सारे छात्र, देश के सारे युवा स्त्री के पक्ष में खड़े हो गए। स्त्री-शोषण के विरुद्ध उठी जनसमूह की आवाज स्त्री की स्थिति में सुधार और उसकी उन्नति का सूचक है। आज़ादी के बाद से अब तक भारत में महिलाओं ने विभिन्न क्षेत्रों में एक लंबा रास्ता तय किया है, परंतु अभी भी मंजिल से मीलों दूर हैं। तेजी से भागते समय के इस पहिये के साथ हमारी रफ्तार बहुत धीमी है, और इस रफ्तार को तभी बढ़ाया जा सकता है जब भारतीय समाज पितृसत्तात्मक मानसिकता से ऊपर उठकर महिलाओं को भी पुरुषों के समान बराबरी के अधिकार प्रदान करेगा। हालाँकि हमारे

संविधान में स्त्री और पुरुष को समान अधिकार दिए गए हैं लेकिन यहाँ का समाज अपने नियमों के अनुसार, महिलाओं को संचालित करता है, जिसमें बदलाव की सख्त ज़रूरत है। साथ ही, इस बात पर भी गौर किया जाना चाहिये कि हमें नारीशक्ति का उद्धारक नहीं, वरन् उनका सहायक बनना है। भारतीय महिलाएँ भी संसार की अन्य महिलाओं की तरह अपनी समस्याओं को सुलझाने की क्षमता रखती हैं। आवश्यकता बस इतनी है कि उन्हें उपयुक्त अवसर प्रदान किए जाएँ, उनका वस्तुकरण करने की बजाय उन्हें मनुष्य समझा जाए।

संदर्भः-

१. पूनम पांडे - नारी लेखन, प्रभात प्रकाशन २०१० पृ. क्र. २८
२. ममता कालिया - खांटी घरेलू औरत, वाणी प्रकाशन २००४ पृ. क्र. ४६
३. मार्च अंक - लमही जनवरी - २०१५ पृ. क्र. १२
४. मन्नू भंडारी - आपका बंटी- राधाकृष्ण पेपरबैक्स, छठी आवृत्ति २०१३ पृ. क्र. ६०
५. उषा प्रियंवदा - रुकोगी नहीं राधिका, अक्षरा प्रकाशन १९६७ पृ. क्र. ५२

डॉ. केशव क्षिरसागर
हिंदी विभाग, रामकृष्ण परमहंस महाविद्यालय, उस्मानाबाद.
मो. नं. ९९६०८९५७९६, ई मेल - drkeshavkshirsagar@gmail.com